Approved by UGC
Journal No. : 63580
Regd. No. 21747

Indexed : IIJIF, I2OR & SJIF
I2OR Impact Factor : 4.850
ISSN 2277-2014

Research Discourse

An International Peer-reviewed Refereed Research Journal

Vol. IX No. III July-September 2019

Editor in Chief
Dr. Anish Kumar Verma

Associate Editors
Dr. Rakesh Kumar Maurya
Dr. Purusottam Lal Vijay
Romee Maurya
Shivendra Kumar Maurya

Research Discourse (ISSN 2277-2014) : An International Peer-reviewed Refereed Research Journal. Published by : SARDI, Varanasi, U.P. (INDIA)
Indexed by : IIJIF, I2OR, SJIF, I2OR Impact Factor : 4.850, Vol. IX, No. III, July-September, 2019, Page No. : 171-174

ऋक्प्रातिशाख्य में वर्ण समाम्नाय विचार

आचार्य (डॉ.) बृहस्पतिमिश्रः*

*सहाचार्यः, संस्कृत–विभागः, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालयः, धर्मशाला, काङ्गडा (हि.प्र.)

सारांश : वेद भारतीय ज्ञान–परम्परा के सर्वस्व है।[1] महर्षि पतञ्जलि ने प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति के लिये छः अंगों सहित वेदों का अध्ययन निष्कारण धर्म (परम कर्त्तव्य) कहा है।[2] वेद के ये छः अङ्ग हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष इनका सर्वप्रथम उल्लेख मुण्डकोपनिषद् में अपरा विद्या प्रसंग में प्राप्त होता है।

मुख्य शब्द : कर्त्तव्य, प्रतिशाख्य, वैदिक शाखा, वर्णपरिवर्तन आदि।

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।[3]

'वेदस्य अङ्गानि वेदाङ्गानि।'[4] अङ्ग्यन्ते, ज्ञायन्ते एभिरिति अङ्गानि' वेदाङ्ग शब्द की इस व्युत्पत्ति के अनुसार वे उपकारकतत्त्व जिनसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप का बोध होता है, वे 'अङ्ग' कहलाते हैं तथा वेदों के यथार्थ स्वरूप के अवबोध में सहायक उपयोगी शास्त्र वेदाङ्ग कहलाते हैं। पाणिनीय शिक्षा में वेद पुरुष की कल्पना करते हुए वेद के इन उपकारक शास्त्रों की वेद पुरुष के अङ्गों के रूप में प्रस्तुति की है –

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठयते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।[5]
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरण स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।

शिक्षा : शिक्षा एक योगरुढ़ शब्द है। यौगिक अर्थ के अनुसार प्रत्येक शिक्षण को शिक्षा कहा जा सकता है। परन्तु वेदाङ्ग के रुप में जिन ग्रन्थों में स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है उन्हें 'शिक्षा' कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के अन्तर्गत वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान इन छः अङ्गों का समावेश किया है– **अथ शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः।**[7]

शिक्षा ग्रन्थों को प्रमुखतया दो भागों में विभक्त किया जाता है– (क) सर्वशास्त्रोपयोगी (ख) वेद की शाखा विशेष से संबद्ध ।

क) सर्वशास्त्रोपयोगी शिक्षा ग्रन्थ : जिन शिक्षाओं में सामान्यतया वर्ण–स्वर–अयोगवाह आदि के भेद एवं उनके उच्चारण स्थान, प्रत्यत्न इत्यादि शिक्षाङ्गों का वर्णन प्राप्त होता है यथा– पाणिनीय शिक्षा, आपिशल शिक्षा, चान्द्र शिक्षा इत्यादि।

ख) वेद की शाखा विशेष से संबद्ध : जो शिक्षा ग्रन्थ वैदिक संहिताओं की शाखा विशेष के उच्चारण के नियमों का विस्तार से वर्णन करते है, वे द्वितीय प्रकार के शिक्षा ग्रन्थ हैं। यथा– याज्ञवल्क्य शिक्षा, भारद्वाज शिक्षा, नारद शिक्षा माण्डूकी शिक्षा इत्यादि।

शाखा विशेष के उच्चारण एवं स्वर–संचार के विशेष नियमों का वर्णन करने वाले ग्रन्थों को 'प्रतिशाख्य' कहा जाता है।

प्रतिशाख्य का स्वरूप : 'शाखायां शाखायां प्रतिशाखम्, प्रतिशाखं भवं प्रातिशाख्यम्'[8] इस व्युत्पत्ति के अनुसार वेद की किसी एक शाखा से संबद्ध ग्रन्थ 'प्रतिशाख्य' कहलाता है। प्रातिशाख्य शब्द का सरलार्थ है : 'प्रति' अर्थात् तत्तत् 'शाखा' से संबन्ध रखनेवाला शास्त्र अथवा अध्ययन। यहाँ 'शाखा' से अभिप्राय वेदों की शाखाओं से है। वैदिक संहिताओं की सुरक्षा और अर्थज्ञान की दृष्टि से ही वैदिक विद्वानों ने तत्तसंहिताओं के पदपाठ का निर्माण किया। कुछ काल के अनंतर क्रमशः क्रमपाठ आदि पाठों का भी प्रारंभ हुआ।

वेद के षडङ्गों के विकास के साथ साथ प्रत्येक शाखा का यह प्रयत्न रहा कि वह अपनी अपनी परम्परा में वैदिक संहिताओं के शुद्ध उच्चारण की सुरक्षा करे और पदपाठ एवं यथासंभव क्रमपाठ की सहायता से वेद के प्रत्येक पद के स्वरूप का और संहिता में होने वाले उन पदों के वर्णपरिवर्तनों और स्वरपरिवर्तनों का यथार्थतः अध्ययन हो। मूलतः प्रातिशाख्यों का विषय यही था। कभी कभी छन्दोविषयक अध्ययन भी प्रातिशाख्य की परिधि में आ जाता था। वैदिक शाखाओं से संबद्ध विषय अनेक हो सकते थे। उदाहरणार्थ, प्रत्येक वैदिक शाखा से संबद्ध कर्मकाण्ड, आचार आदि की अपनी अपनी परम्परा थी। उन सब विषयों से प्रातिशाख्यों का संबन्ध न होकर केवल वैदिक मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण, वैदिक संहिताओं और उनके पदपाठों आदि के सन्धिप्रयुक्त वर्णपरिवर्तन अथवा स्वरपरिवर्तन के पारस्परिक संबन्ध और कभी कभी छन्दोविचार जैसे विषयों से था। इन ग्रन्थों में सामान्यतया स्वशाखा के बाह्य स्वरूप – वर्ण, पद, स्वर, सन्धि एवं छन्द इत्यादि विशेषताओं पर विस्तार से विचार किया गया है।[9] वाजसनेयि प्रातिशाख्य में 'स्वरसंस्कारयोश्छन्दसि नियमः'[10] कहकर प्रातिशाख्य का प्रतिपाद्य वेदों में स्वर एवं संस्कार के नियमों का विधान कहा गया है। वहीं भाष्यकार आचार्य उव्वट ने वेद मन्त्रों के शुद्धि – उच्चारण की सिद्धि प्रातिशाख्यों का प्रमुख प्रतिपाद्य माना है।[11]

प्राचीन ग्रन्थों में प्रातिशाख्य ग्रन्थों के लिये 'पार्षद' पद का प्रयोग भी प्राप्त होता है। विष्णुमित्र ने ऋक्प्रातिशाख्य पर अपनी वर्गद्वयवृत्ति में विवेच्य ग्रन्थ के लिये 'पार्षद' पद का प्रयोग किया है। यास्काचार्य ने निरुक्त में प्रातिशाख्य के लिए पार्षद शब्द का प्रयोग करते हुए कहा है – सब शाखाओं के प्रतिशाख्यों की प्रवृत्ति पदों को ही संहिता का आधार मानकर हुई है।[12] निरुक्त व्याख्याकार दुर्गाचार्य ने 'पार्षद' पद प्रातिशाख्य का पर्याय मानते हुए लिखा है कि जिन ग्रन्थों के द्वारा अपने चरण की परिषद् में एक शाखा से संबद्ध पद विभाग, प्रगृह्य, क्रमपाठ, संहितापाठ एवं स्वर का लक्षण कहा जाता है, वे ग्रन्थ पार्षद अथवा प्रातिशाख्य कहलाते हैं।[14]

प्राचीन काल में सब वैदिक शाखाओं[16] के अपने–अपने प्रातिशाख्य रहे होंगे। संभवतः वैदिक शाखाओं समान[16] उनके प्रातिशाख्य भी लुप्त हो गए। अद्यत्वे प्रातिशाख्यों में और उनकी व्याख्याओं में भी अनेक पाठ अशुद्ध या अस्पष्ट है। ऋग्वेद संहिता के सायण भाष्य जैसे महान् ग्रन्थ में कदाचित् एक बार भी ऋग्वेदप्रातिशाख्य का उल्लेख नहीं है और कई स्थानों पर अनेक पदों की सन्धि बलात्पाणिनिसूत्र से सिद्ध करने